Chapter-6

षष्ट अध्याय

अक्षा की अध्यात्म भावना

षष्ठ अध्याय

अखा की अध्यात्म भावना

प्रस्तुत अध्याय को " अनुभूति " तथा उसकी " अभिव्यक्ति के उद्देश्य " की दृष्टि से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-- अखा की " अध्यात्म-साधना " और " लोकमंगल की कामना " । शैली की दृष्टि से इन्हें अखा की साधना का " रचनात्मक पक्ष " और " ध्वंसात्मक पक्ष " भी कहा जा सकता है । इन पक्षों और इनमें प्रस्तुत होनेवाले विभिन्न विषयों के अध्ययन की ~~[illegible]~~- रूपरेखा निम्नांकित चित्र के द्वारा सूचित की जा सकती है--

अध्यात्म साधना

- रचनात्मक
  - आत्मानुभूति
  - साधना-मार्ग
    - प्रेम-विरह-भक्ति, सद्गुरु, अहंत्याग, शुद्धविचार, ज्ञान, सुरति-निरति, उल्टीचाल, नाम-स्मरण, प्रणवसाधना, स्त्रीसंगत्याग।
  - सहजाचरण की प्रस्थापना
- ध्वंसात्मक
  - अंधविश्वासों का मूलोच्छेदन
    - अवतारवाद, पुनर्जन्म, कर्मवाद
  - मिथ्याचार एवं बाह्याचारों का खंडन
    - तीर्थाटन, छापा-तिलक
  - विभिन्नधर्म साधनाओं का विरोध
    - बहुदेववाद, रसायन, गुटका, ध्यान
  - सामाजिक वैषम्य का प्रत्याख्यान
    - जातिप्रथा

यहाँ इन सब पर क्रमशः प्रकाश डाला जायेगा ।

रचनात्मक पक्ष

आत्मानुभूति

यद्यपि अखा सर्वात्मवादी थे तथापि निकट से देखने पर उनकी साधना पद्धति को विशेषकर "अद्वैतमत" के अनुरूप कहा जा सकता है। अद्वैत मत में अपरोक्षानुभूति के द्वारा आत्मतत्व की उपलब्धि पर विशेष बल दिया गया है। यद्यपि अखा ने आत्मतत्व को " मन और वाणी से पर "[१] एवं " सभी उपमाओं और दृष्टांतों के लगाने पर भी अवर्णनीय "[२] बताया है तथापि " निज घट " में उसकी स्वानुभूति को व्यक्त करने के प्रयत्न भी किये हैं। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप प्राप्त उक्तियों का अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि उसमें "भावनात्मक उक्तियों" की अपेक्षा "विचारात्मक उक्तियों" की प्रधानता है। अखा की विचारात्मक उक्तियों का आधार है " अद्वैत दर्शन " और भावात्मक उक्तियों का अधिक संबंध "रहस्यानुभूति" से है।

अखा का कथन है कि आकाशस्वरूप " आप " चैतन्य मनुष्य के तन में ही बसता है[३]। मनुष्य की देह रूप "दर्पण" में उस चैतन्य की आभा प्रतिबिंवित होती है[४]। जैसे गाय में दूध रहता है वैसे जीव में आत्मा रहती ही है किंतु

---

१. अ. जहां नहीं शब्द उच्चार न जंता ।१। ब्र०ली० अ०रस, पृ० ८७
   आ. मन वाणी का नहीं तहां चारा । जकडी ४ । अ०रस, पृ० १५

२. दृष्टांत उपमा जे जे दीजे, ते तो एवं रहे ओरु।
   शुं करे बुद्धि बापडी, जो चाल्याथी दस डगलां परु । अखेगीता, कडवक-२३

३. तुलनीय: इहैवान्त: शरीरे सौम्य स पुरुषो : ।। प्रश्न० ६।२
   अंगुष्ठमात्र: पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।। कठ० २।१ ।१२

४. तनमें बसता देखिये आप अखा आकाश।
   देह सो दर्पण भई चैतन का आभास । २६ । नि० ज्ञा० पृ०१६७

जिस तरह गाय को अपने में रहे हुए दूध का ज्ञान नहीं होता है वैसे जीव को भी अज्ञान के कारण उस वस्तु का अनुभव नहीं होता[1]। अखा ने " आत्मा " को " प्राणेश " बताते हुए उसकी स्थिति शरीर में ही बताई है[2]। वास्तव में जीव स्वयं " राजपुत्र[3] " – परब्रह्म स्वरूप है किंतु इंद्रियों की बहिर्मुखता एवं अज्ञान के कारण उसे " स्वरूप " की अनुभूति नहीं होती है। जीव की इस भेद दशा को उसके अज्ञानजनित ~~व्यवहार~~ बताकर अखा एक ओर जहाँ चिन्ता व्यक्त करते हैं वहाँ दूसरी ओर वैसी दशा को खुद जीव की मूढ़ता द्योतक बताकर उसके प्रति व्यंग्य भी करते हैं। अखा ने जीव को " मिसरी का पुतला " कहकर उसे " महुवा की शराब " के लिए तरसता हुआ बताया है[4]।

---

१. अखा आत्मम आपमें पण जीव न जाणे पास।

आपमें दूध अनुभवे नहि गौ भुखावे घास ।। उपदेश अंग -२०

२. जेही पंडयमें प्रान बसे ताहि बसत प्राणेस।

कागत ओट नहि अखा तहां बिच्च्य पडे बहु वेश । २३ । ज्ञा०द०, पृ०२३०

३. अ. राजपुत्र स्वभावे ऐसा, कोई को शीस न नामे।

जाचक जगत प्रणामे प्रश्ने कबहुं राज्य न पामे । भजन -२३, पृ० १२७

आ. तू राजपुत्र कां दिनमां मळे ? कां विचार वोणो घरघर रळे ।

-छप्पा ४७

४. मिसरी का पुतला महुवाकु तरसता ।५ ।

-हरिजन अंग, अ० रस, पृ० २१२

अखा का कथन है कि आत्मा की पहिचान नहीं करने पर मनुष्य का जीवन व्यर्थ चला जाता है। अत: वेष, टेक, माला, तिलक, आदि बाह्याचारों को मिथ्या बताकर अखा ने " आत्म पहिचान " करने का उपदेश किया है। अखा का कथन है कि जिन्हें " आपदर्शी " [आत्म दर्शन] नहीं होता है वे अन्य उपचार करते रहते हैं। किंतु ये उपचार वैसे ही मिथ्या है जैसे जल में प्रतिबिंबित आम्रफल को देखकर रसाल के स्वाद का अनुभव करना।[१] उनका कथन है कि एक मात्र आत्मा को जान लेने पर मन की सकल जंजाल से मुक्त हुआ जा सकता है: इतना ही नहीं जिस घट में " आतम सूझ " होती है उसका " साँई " से मेला हुआ रहता है।[२] आत्मा को समझनेवाले को ~~समझनेवाले को~~ " स्वामी के पद " का प्रबोध अपने आप ही हो जाता है। इस प्रबोध के कारण उसे अकारण ही " मुदा " - अद्‌भुत आनंद का अनुभव होता है।

आत्मानुभव की महत्ता बताते हुए अखा का कथन है कि जिस तरह

---

१. ज्याकु आपदर्शी वही जो करे आप उपचार।
प्रतिबिंब के आंबका कीनु फल भरस्या रसाल।५।
-भ०वि० अ०रस पृ० २२०

२. सांइ से हेला वाहि कुं जिस घट आई सुझ ।३।
-सूझ अंग

३. अब मोहि आनंद अद्‌भूत आपा ।
-पद १३ अ०रस, पृ० ०६ ।

सागर में रत्न होते हैं वैसे अनुभवी पुरूष में प्राणनाथ प्रगट रूपमें मिल सकते हैं।[१] सब गुणों के होने पर भी यदि आत्मानुभव नहीं है तो सब गुण व्यर्थ है इस वस्तु को समझाते हुए अखा का कथन है कि जिस प्रकार आकाश में नव लख तारा के होने से उन्हें सूर्य नहीं कहा जा सकता वैसे अनेक गुणों के होने से मनुष्य को " आत्मज्ञानी " नहीं कहा जा सकता।[२] बिना आत्मज्ञान के मनुष्य के सब गुण भवसागर में डुबानेवाले पत्थर के समान है, पोथियों की विद्या को उलझानेवाली[३] एवं उसके आधार पर माने गये " पढ़ - अनपढ़ " के भेद को आत्मज्ञान के क्षेत्र में अस्वीकृत करते हुए अखा का कथन है कि अनेक विद्याओं के ज्ञाता को यदि आत्मज्ञान नहीं है और अनपढ़ को आत्मज्ञान है तो दोनों के मध्य का भेद झूठा है। उन्होंने यह भी बताया है कि ऊँची जाति के होने पर भी हरि की प्राप्ति नहीं होती है। हरि की प्राप्ति होने और न होने की बात को " लोहे की काई लगे दर्पण एवं सुवर्ण का

---

१. रत्नाकर बिन बड़ रतन अखा न आवे हाथ।

अनुभवी पुरूष सागर जहाँ त्याँहा प्रगट मिले प्राणनाथ।६।

- सुझ अंग, अखास

२. जो आत्मज्ञान न उपज्या, तो गुण लिज्ये क्या होय ?

नव लख तारा तें अखा, दिनकर कहे न कोय।।२।।

- चेतना अंग ।

३. पढते पीयु न पाया कोई ज्युं पढीर त्युं दीसे दोइ

ज्युं त्युं उलझ घणेरी होई।

-जकडी -२४ पृ० ३५

दृष्टांत देकर समझाते हुए कहा है कि जिस प्रकार उत्तम धातु होने पर भी सुवर्ण में अपना प्रतिबिंब नहीं देखा जा सकता । जबकि लोहे की काई लगी दर्पण में देखा जाता है वैसे ही जाति के ऊँच होने से हरि की प्राप्ति नहीं होती, जाति कोई भी हो " अनुभव " होना चाहिए और तभी हरि की प्राप्ति हो सकती है[१]। गहरे अंतर से उद्भूत अनुभव की तुलना में सीख सुनकर के प्राप्त किये हुए ज्ञान को " कृत्रिम " एवं निरर्थक[२] बताते हुए अखा का कथन है कि गहरे अंतर से उत्पन्न होनेवाला अनुभव ही जाज्वल्यमान होता है, जिनको इस प्रकार का "आत्म-बोध " न हुआ हो ऐसे उपदेशकों पर विश्वास नहीं करने के लिए अखा ने कहा है[३]। अखा का कथन है कि देहदर्शियों से भरी दुनिया में आत्मदर्शी कोई ~~सब~~ एक ही होता है[४]। " काल रूपी जल " और " ब्रह्म रूपी दरिया " के रूपक द्वारा अखा ने इसी वस्तु को सुंदर ढंग से यों व्यक्त किया है -

देह के कर्म काल जल तीरे डुब रहा जुग सारा।
ब्रह्म दरिया में विरला झीले, कोई अखा रे सोनारा ।
-पद ५.

---

१. जात उंची हरि ना मिले अनुभव उंच हरिभाई।
ज्यौं लोह में मुख देखिये, अखा कंचन में न दिखाई । अ०रस, अनुभव अंग, साखी:१ पृ०३१६

२. अखयरस, अनुभव अंग, साखी-८-९, पृ० ३१६.

३. अखा आत्म बोध जामे नहीं मत तासु पतियाय । ५ ।
-विटंड अंग

४. देहदर्शी दुनिया अखा, आत्मदर्शी को एक ।६।
-विवेक अंग

आत्मदर्शी का मत " अगाध " होता है और ऐसे अगाध मतवाले विरले ही होते हैं क्योंकि अपने कुल मर्यादा की चाल का परंपरया अनुसरण कर सीधे रास्ते पर सबजन चलते हैं किंतु जो " खालिक के ख्याल से मिले रहनेवाले " होते हैं वे टेढ़ी चाल चलते हैं । अखा ने ब्रह्म की ऐसी खुमारीवालों के लिए " मेंगल " एवं स्वात्मानुभव रहितों के लिए लश्कर में बोझ ढोनेवाले " लदोरिया " अभिधान " प्रयुक्त किये हैं[2]।

" आत्मबोध " और " ब्रह्मभाव " के जागरित होने पर अखा की सब कामनायें नष्ट हो गई हैं[3]। अविद्या और माया की सभी प्रतीतियाँ नष्ट हो गई है अर्थात् अखा ने ब्रह्मानंद लाभ होने पर " अमरत्व " प्राप्त कर लिया है

---

१. सीधे पेंडे सब चले, जात वरन कुल चाल,
टेढ़ी चाल चले अखा, जे मिल्या खालिक के ख्याल ।
-आत्मपहिचान अंग

२. जिस मेंगल को मस्ती अखा, ता पर साँई का पार।
अखा और लदोरिया वहे लश्कर का भार ।४।
-हरिजन अंग

३. तुलनीय : यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामाये स्म हृदिश्रिता:।
अथ मर्त्यो ऽमृतो भवत्यात्र ब्रह्म समश्नुते ।।१४ ।।
यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थय: ।
अथ मर्त्यो ऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम् ।। १५ ।।
-कठ० ३

या उनकी " जीवन्मुक्ति " हो गई है[१]।

अखा दार्शनिक उहापोह करनेवाले आचार्य न होकर " स्वानुभवी संत " थे, अत: उन्होंने आत्मोपलब्धि [Self Realisation] के उपायों में शास्त्र सम्मत साधनों[२] का आग्रह न रखकर साधना की सिद्धि में खुद को सहायभूत उपायों का भी विस्तृत वर्णन किया है। अखा द्वारा वर्णित ऐसे उपायों में " प्रेम " विरह " भक्ति तथा सद्गुरु सेवा, आदि " आत्म - तत्त्व विचारणा " " ज्ञानोदय " " तीव्र जिज्ञासा " " विवेक " तथा वैराग्य और " सूरति - निरति की साधना ", " ओमकार लक्ष्य " " उल्टी चाल " आदि क्रमश: भक्ति मार्ग, ज्ञानमार्ग और भोग मार्ग में परंपरा से स्वीकृत साधन उल्लेखनीय है।

---

१. अ. त्रिगुण की निंद्रा घेर न लागी, अखेराम अंतरमति जागी।

-पद १५

जन्म मरण शंका सब भागी, जब मेरी सूरता मुजसों लागी। भजन १४, पृ० ११९ अ० र०

आ. ब्रह्म अग्नि अंतर में लागा, जल गई माया रही नहीं जागा,

राम के जीवणे जीवणा मेरा, जहां नहीं काल करम का घेरा। पद १७

इ. मरण जीवण सो देह का धरमा, मैं तो नाहीं इन्द्री अरु चर्मा।

नाम धरनकुं अखा सोनारा, सदा निरंतर राम है सारा। पद -१६

ई. जीवन्मुक्ति सकल घटवासी, सब रस भोगी भीनडे।

अजब कला अखा सोनारा, ऐसो अनुभव चीन्यो। पद -११

२. साधनानि नित्यानित्य वस्तु विवेकहामुत्रफल भोग विराग शमदमादि षट् सम्पत्ति मुमुक्षुत्यानि।

- वेदांत सार -१५

प्रेम, विरह और भक्ति

ईश्वर की प्राप्ति में प्रेम " खरी रति " की आवश्यकता बताते हुए अखा ने कहा है कि बिना प्रेम के पियु का मिलन नहीं हो सकता । ईश्वर के प्रति निबिड़ एवं तीव्र प्रेम से अभिभूत हो कर जो अपना शिश उतारकर जमीन पर रख सकता है वही इस मार्ग पर चल सकता है[१]। किंतु अखा ने प्रेम के साथ परमात्मा की प्रीछ [Knowledge] का होना भी अनिवार्य बताया है[२]; क्योंकि तीव्र प्रेम के कारण ईश्वर की प्राप्ति तो हो सकती है परंतु ईश्वर कौन है ? कहाँ है ? आदि की प्रीछ के बिना किसको पाया जाये[३]? प्रेम को " नदी " " भूत " एवं " नाग " बताते हुए अखा का कथन है कि " परमात्मा रूप " सागर " में जीव रूप नदी स्नेह रूप जल के द्वारा ही एकरूप हो सकती है[४]। स्नेह रूप " भूत-प्रेत " के लगने पर ही " साँई " मनुष्य की

---

१. अ. विना ईश्क हरि ना मिले ए सिर साटे का खेल ।१२। नेष्टज्ञान अंग

आ. कोई है रे सोहागन नारी रे ! प्रेम गली की खेलारी रे ।

प्रेम गली है ऐसी रे सिर साटे पग देती रे ।१४ - जकड़ी पृ०२५

२. प्रेम मिलावे पियु को प्रीछे समरस होय ।१।

- प्रेम०प्री० अ०रस, पृ० ३०७

३. प्रेम अकेला क्या करे जो प्रीछ न होय साहाय ।२।

- प्रे०प्री० अ०रस, पृ० ३०७

४. जे कोइ नीर मीलिज नदी, सो सारा समुंदर मिल जावे।

नेह नदी को ना मिले, सोहि सूखे जे हि जहां पड्या । ६७ ।

-झूलना, अ०रस पृ० ८०

बांह पकड़ते हैं[१]। प्रेम का नाग डसने पर संसार के अनुभव खोटे सिद्ध होकर नया ही स्वाद प्राप्त होता है[२]। इस प्रकार विभिन्न रूपकों की योजना द्वारा अखा ने प्रेम मार्ग की श्रेष्ठता का निरूपण किया है[३]। इस मार्ग में विरह की महत्ता बताते हुए अखा ने बिरह और प्रियतम [परमात्मा] में अभेद तक बताया है। अखा का कथन है कि बिरहा तो परमात्मा का जीव [प्राण] है[४]। जिस प्रकार मेघ की वृष्टि के कारण ही सृष्टि में कुछ उत्पन्न होता है और सर्वत्र हरा भरा दिखाई पडता है। वैसे विरह के कारण ही हरिया हरि के दर्शन किये जा सकते हैं[५]। जिस को विरह लगता है वह ऐसे ही हरि

---

१. नेह का भूत जिसे लाग पड्या वो ना छोड़े एक वली
उसके जीवणो भूत जीवे आखर लेवे आप मांहां
नेह की बात ऐसी ज अखा ! जिसकी पकडी सांई बांहां ।६८। फूलना
— अ० रस पृ० ८१

२. प्रेम का नाग जिसे डसता है लीम और लुण तिसे होय मीठा
यूं सारा आलम अखा ! प्रेम लाग्या तिनुं आप दीठा ।१००। फूलना, वही०

३. अ. लाख बातुं की बात अखा । भाग्य उसका जिसे नेह जड्या ।६७।फूलना
— अ०रस पृ०८०

आ. प्रेम पाताल जहां फूटता है, निकटे नहीं सो नीर कबी
अखा सो आखर एक होवे सब सूं नेह भी बाध बढी ।६६। फूलना, वही०

४. विरह पियु का जीव है, बिरहा पियु नहीं दोय
बिरहा सो सांइया, अखा ।और मत जातां कोय ।।४।। विरह अंग अ०रस०

५. बिरहा ज्युं मेहा अखा मेह ते सब कुछ होय
हरिया हरि तो देखिये । जो बिरहा लाग्या मोह ।५। वही०

रूप " हो जाता है जैसे पारस को स्पर्श करने पर तांबा कंचन हो जाता है।[१] अत: अखा ने अध्यात्म पथ के पथिकों से यह कहा है कि हरि के " दिदार " प्राप्त करनें हों तो बारबार बिरह को ही माँगिये[२]। विरह के कारण ही घट के भीतर भक्ति, योग, ध्यान " ज्ञात-आत्मज्ञान " आदि सब उत्पन्न होता है[३]। अखा ने अपने 'झूलना में " ज्ञात-आत्मज्ञान की प्राप्ति में प्रेम और बिरह की महत्ता को " सराण " के रूपक द्वारा सुंदर ढ़ंग से व्यक्त किया है[४]।

---

१. ज्यों तांबा परसतुं पारसुं तब कंचन होई जात।
   त्यों विरहा परसुं जनकुं सोनर तव हरि थात। ६। अ०रस, विरह अंग, पृ०११८

२. अ. साचा हरिजन सब सुनो, जो चाहो दिदार।
   फिर फिर बिरहा मांगीयो, केहे अखो निरधार। १५। वही०
   आ. तुलनीय: हँसी हँसी कंथ न पाइये जिन पाया तीन रोय।
   -कबीर

३. भक्ति भक्त को तो फले जोग ध्यान तो आय।
   ज्ञान अखा तब उपजे, जो बिरहा होई समाय। १४।
   -वही०

४. विरह सराण और आप हीरा, नेह की रज ले घस पेहला।
   प्रगटे " जात " भीतर में सु तब हीरा का मोल जाणी।५७।
   -झूलना, अ०रस पृ० ७८

साँई को प्राप्त करने में "विरह, सुरत और नूरत" की आवश्यकता बताते हुए अखा ने कमान-धनुष [विरह] साड़ा - बाण [सुरति] और निशान [निरति] के सुंदर रूपक की योजना की है[१]। प्रस्तुत रूपक के द्वारा अखा का यह कथन है कि "विरह रूप धनुष" पर "सुरति रूप बाण" चढ़ाकर "निरति रूप ब्रह्म निशान" को प्राप्त किया जा सकता है। नेह और विरह को "पियु" के "पहलवान" बताते हुए अखा ने कहा है कि ये पहलवान परमात्मा के "नूर" के साथ जीव का "निकाह" करा देते हैं[२]। जीव और प्रियतम की "रंग रेल" तभी चल सकती है जब ये दोनों पहलवान अयारी दें। इन दोनों पहलवानों की सहायता से ही जीव में "सूझ" और "समझ" जागृत होते हैं[३]।

अखा ने भक्ति को भी एक महत्त्वपूर्ण साधन माना है। किंतु अखा द्वारा अनुमोदित भक्ति वैश्नव धर्ममें स्वीकृत "नवधा" या "अपरा" तक

---

१. तीर करडी कमान में का कसरत नूरत निशान मारे

बिरह कमान और सूरत साडी

पियु पाये बिन रहने न बारे। १०१/ स्खलना, अ०रस, पृ० ३०१

२. नेह बिरहा पहलवान पियु का, छोडे नहीं जिसे आप लागे।

नूर सूं जाय निकाह करे बनावनी होय एक जागे।

"रंग की रेल सो तो ज चले जो दोनुं अयारी दे भली ।१०२। स्खलना, वही.

३. सूझ समझ वहां ज होवे नेह बिरहा लाग्या जहीं।

सब को दुर दराज पियु और सूझ समझ को दूर नहीं ।१०३। स्खलना, वही.

सीमित नहीं है। अखा की रचनाओं का मनोयोगपूर्ण अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि " श्रीमद भगवद्गीता " में सूचित चार प्रकार के भक्तों में से अखा[1] को चतुर्थ प्रकार का " ज्ञानी " भक्त कहा जा सकता है। ज्ञानी की भक्ति " अहेतुकी " होती है और ऐसा भक्त भगवान को सर्वाधिक प्रिय होता है। अखा की भक्ति के मूल " ज्ञान " में है अर्थात् " अखा की भक्ति ज्ञाननिष्ठ " है। भक्ति की " विहंगिनी " के रूप में कल्पना कर अखा ने ज्ञान और वैराग्य को उसके दो पंख बताया है। ज्ञान और भक्ति के अविनाभाव संबंध को ध्वनित करते हुए अखा का कहना है कि जिस प्रकार चक्षुहीन मनुष्य इधर उधर टकराता रहता है ऐसे ही ज्ञानहीन भक्त ईश्वर के प्राप्त्यर्थ इधर उधर दौड़-धूप करता रहता है[3]

---

१. चतुर्विधा भजन्ते मां जना: सुकृतिनोऽर्जुन।

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।। ७ :१६ ।

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते ।

प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थ महं स च मम प्रिय: ।: ७:१७ ।

२. भाई भक्ति एवी पंखिणी, जेने ज्ञान वैराग्य बे पांख छे

चिदाकाश माहि ते ज उडे जेने सद्गुरु रूपी आंख छे । अखेगीता ।

३. ज्ञान विना भक्ति नव थाय ज्यम चक्षुहीणो ज्यां त्यां अथडाय ।१।

— छप्पा, दंभ भक्ति अंग

सगुण ब्रह्म की भक्ति को " इकासी[1] " प्रकार की बताकर अखा ने " अणलिंगी " निर्गुण ब्रह्म की भक्ति को " बासीवें " प्रकार की कह कर इकासी प्रकारों से उसे भिन्न एवं ऊपर की बताया है। उनका कहना है कि " अणलिंगी " की यह " बासीवीं " भक्ति महा कठीन है और विरले जन ही उसे कर सकते है[2]। इसी भक्ति को अखा ने अन्यंत्र " पूर्ण भक्ति[3] " " साची भक्ति[4] " " निराशी-भक्ति[5] " आदि अभिधानों से भी अभिहित किया है। अखा ने " अंतर में अपार रूप से रहनेवाली लगन " को " भोली भक्ति[6] " कहा है। इस भोली भक्ति में दाँव-पेच और चातुरी का नितांत अभाव होता है[7]। इस भक्ति के मार्गदर्शक

---

१. सात्त्विक, राजस, और तामस - तीन प्रकार के भेदों एवं उन प्रत्येक के तीन तीन प्रकार के प्रयोजनों [सात्त्विक -१कर्मक्षय अर्थे २. हरि प्रित्यर्थे ३. विधि सिध्यर्थे : राजस - १. विषय प्राप्त्यर्थे २.यशलिप्सा ३. ऐश्वर्य वांछा : तामस - १. हिंसार्थे २. दंभार्थे ३. मात्सर्यार्थे] को " १.श्रवण २.अर्चन ३.वंदन ४.कीर्तन ५.पादसेवन ६.स्मरण ७.दासत्व ८.सख्यत्व और ९. आत्मनिवेदन " से गुनने पर इकासी प्रकार होते हैं। - दृष्टव्य: अप्र० अ०वा० पृ० ३५-३६

२. अणलिंगीनी भक्ति महा वसमी कोईक जाणे ते करी । अखेगीता ।

३. जे नर देखे सघळे हरि, पूर्ण भक्ति तो तेणे करी ।३८। छप्पा

४. सद्विचार ते साची भक्ति, जेणे जीव शिवनी लहीए वक्ति । ४१९ छप्पा

५. निराशी भक्ति जे कोई करे तेनुं सहेजे कारज सरे। ६८२ । छप्पा

६. भोरी भक्ति ~~बे-कोई-करे-तेनुं~~ चित्र की लगन अंतर चले अपार ।६। भो०भ०अंग
-अ०रस पृ० २०९

७. भोरी भक्ति ऐसी अखा चाल्य चातुरीहीन ।।७।। भो०भ० वहीं०

स्तंभों के रूप में और सब संतों के अग्रणी के रूप में अखा ने " भक्त ध्रुव " और प्रल्हाद " तथा " संत नामदेव " और " कबीर " के नामोल्लेख किये हैं[१]। संत साहित्य में गुरु का महत्व सविशेष है। बिना गुरु के मार्गदर्शन एवं सहायता के अध्यात्म मार्ग में आगे बढना असंभवसा है। अंग्रेजी में गुरु के लिए उपर्युक्त शब्द नहीं है तथापि ! "Spiritual teacher" शब्द से गुरु का अर्थ लिया जा सकता है। संत साहित्य में गुरु के पर्याय के रूप में " सिकलीगर, साहु, सुनार, चन्द, ~~चिंतामणि~~- चिंतामणि, भृंगी, वैद्य, हंस, और पारिख आदि शब्दों का व्यवहार किया जाता है[२]। यद्यपि अखा ने विशेष कर " गुरु " शबद् को ही अधिक बार प्रयुक्त किया है। तथापि कहीं कहीं गुरु को गारुड़ी, चंदन, मेघ भी कहा है[३]। बिना गुरु की कृपा के न तो

---

१. कब ध्रु प्रह्लाद पींगल पढ़े कब व्याकृण नामा कबीर
   भक्ती खंभ भये अखा सब संतन के पीर। ५।
   -मो० म०, अ०रस, पृ० २०६

२. हिन्दी में निर्गुण संप्रदाय : अनु० पितांबरदास बड़थ्वाल
   पृ० ३७८

३. अ. मोह्सर्पे जीव को डस्या, सद्गुरु कारत ताहे।४।
   -सद्गुरु अंग, अ.साखीओ पृ० ६७
   आ. अखा चंदन सद्गुरु, जाके वासि वन वसाईं।५।
   -वही० पृ०६८
   इ. सदगुरु मेघ समान है करत न काहूकी आस
   मेघ बरसत जक्त जीवाचने गुरु काटत भव पास।।४।।
   - गुरु अंग। अ०रस पृ० २६६

माया के नशे का नाश होता है और न तो हरि की प्राप्ति होती है[1]। जिस प्रकार श्वेताश्व [६,६, २३] के " यस्य देव परा भक्ति यथा देवे तथा गुरौ " मंत्र का भाष्य करते हुए शंकराचार्य ने- " परमात्मा के समान ही गुरु में भक्ति रखनेवाले गुरु-भक्त में परम गुह्यब्रह्मविद्या स्वात्मानुभव का विषय होती है " - कहा है वैसे अखा का भी कथन है कि " सदगुरु की सेवा द्वारा ही सत्यज्ञान की उपलब्धि हो सकती है। " सदगुरु और सूर्य में समानता बताते हुए अखा का कथन है कि जिस प्रकार सूर्य " चर्म चक्षु " खोलता है उसी प्रकार सद्गुरु " ज्ञान-चक्षु " खोलते हैं[2]। किंतु अखा का यह भी कथन है कि जो [गुरु] अणलिंगी, अनुभवी, कार्य में निपुण एवं लक्ष के प्रति निरंतर लक्ष रखनेवाला हो वही अपने शिष्य के " चक्षुओं " को खोल सकने में समर्थ होता है[3]। अखा का कथन है कि " साचा गुरु" अपने शिष्य को " हरि-रूप " कर देता है। गुरु की इस महानता के

---

१. अ. तेम सद्गुरु प्रतापे परब्रह्म ने भेटिये माया सुं पियु घेन नाशे
-पद: २-३

आ. चरण कमल गुरु देवनां सेवतां हरि मले ।४-५।

इ. अखा गुरुकृपा विना रखे करे हरिनी आश । ल०ही० अंग, साखी।

२. सुरज का और संत का, प्राय: एक स्वभाव
चर्मचक्षु खोलत दिनकर, ज्ञान चक्षु संत फेलाव ।४७ ।१६

३. अणलिंगी और अनुभवी, निपुण निरंतर लक्ष
एसा गुरु करना अखा सो खोलत शिष्य को चक्ष ।२।

-शि०आ० अंग, साखी।

के कारण अखा ने " गुरु और गोविंद में अभेद " का निरूपण किया है[1]। इनने इतना ही नहीं गुरु को "परब्रह्म - सा सर्वव्यापक", "सर्वनाशी एवं अजरायल" बताया है[2]। अखा का यह भी कथन है कि जिस शिष्य को गुरु और गोविंद के अभेद का बोध होता है वह केवल सब प्रकार के सुख को ही प्राप्त नहीं करता, प्रत्युत स्वयं " हरिरूप " भी हो जाता है। जो मुमुक्षु गुरु और गोविंद की इस एकरूपता को[3] नहीं समझ सकता है वह डग डग पर माया के कारण "डहकता"[4] रहता है। माता और पिता से भी गुरु की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए

---

१. गुरु गोविंद गोविंद सो ही गुरु,
   गुरु गोविंद गने नहीं नर न्यारा।
   -सं०प्रि० ८, अ०रस पृ० १४०

२. गुरु मेरा समरा भया सब नामुं देवे बोल
   सब नेन देखे अखा गुरु बेकिमत्य अमोल ।३।
   नां होना नां होयगा अजरायल गुरुदेव
   स्थावर जंगम सब अखा करे गुरु की सेव ।४।
   -गुरु अंग, अ०रस पृ०१६३

३. सदगुरु चरण शरण अखो केहे
   स्वे हरिरूप करे मन आसे।
   - सं०प्रि० ६ अ०रस पृ० १४०

४. अ. गुरु गोविंद पहचान न पायो, रिपु सुं हेत हेत सुं दगो रे।
   आ. डेहक्या डग डग माया सोनारा, जो गुरु बेन सुनी न जाग्यो रे।
   - सं०प्रि० १३, अ०रस पृ० १४१

अखा का कथन है कि माता पिता तो बच्चे को जन्म देकर उसके पिंड के पालक ही होते हैं जबकि गुरु अपने शिष्य का " धुर " तक – परब्रह्म प्राप्ति तक साथ करता है[१]। गुरु की करुणा प्राप्त होने पर शिष्य को शास्त्र के कोई विधिनिषेध ग्रस्त नहीं कर सकते[२]। ज्ञान, भक्ति और वैराग्य से भी गुरु-कृपा की श्रेष्ठता स्थापित करते हुए अखा का कथन है कि जिस पद को प्राप्त करने में ज्ञान, भक्ति और वैराग्य एक अंग मात्र है, उस पद को गुरु की करुणा मात्र से पाया जा सकता है[३]।

अध्यात्म मार्ग में " निगुरा " होना हेय समझा जाता है। क्योंकि ज्ञान गुरु के उपदेश से ही जाना जाता है करोड़ों शास्त्रों से नहीं[४]। विशेषकर

---

१. माता पिता हितकारी है पिंड उद्धरण हार
   [पण] गुरु हितकारी धुर लगे, अखा जे छोडे पार।४७।१-२
   – श्री अखाजीनी साखीओ पृ० १७६

२. बिधि निषेध बपुराका क्या बल,
   ज्यांहा गुरु की करुणा बिलसी। सं०प्रि० २३

३. ज्ञान भक्ति वैराग्य कृत सब है जाको अंग
   सो पद तब पाइये, अखा, जब सदगुरु मिले सुचंग ।।
   – मरम०भ० ११

४. अ. तुलनीय: भवेद्वीर्यवती विधा गुरुवक्त्र समुद्भवा ।
   अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यति दु:खदा ।।
   – घेरंड संहिता –३।१०
   गुरु प्रसादत: सर्वं लभ्यते शुभमात्मन:।
   तस्मात्सेवो गुरुनित्यमन्यथा न शुभं भवेत् ।।
   – घे०सं० ३।१४

   आ. गुरुपदेशत: ज्ञेयं न होवं शास्त्र कोटिभि:।

मध्यकालीन साहित्य में गुरु-महिमामान की महत्ता यहाँ तक बढ़ी कि मंगला-चरण में गुरुवंदना करने का व्यापक प्रयोग प्रचलित हो गया । अखा में भी प्रस्तुत प्रवृति का निर्देश ढूँढा सकता है[१]।

गुरु की बात को स्वीकार कर बर्तनेवाले को अखा ने "गुरुमुखी," "सगुरा" कहा है जब कि गुरु को नहीं माननेवाले को "मनोमुखी" "नगुरा" कहा है । दोनों के बारे में अखा के कथन हैं कि "मनमुखी" को ज्ञान चक्षु नहीं प्राप्त होने के कारण भक्ति के क्षेत्र में अंधवत् इधर उधर ड़हकाया करता है – और "नगुरा" स्वयं ड़हकाया है और औरों को भी ड़हकाता है[२]।

---

१. ।अ। गुरु गोविंद, गोविंद गुरु नाम युगल रूप एक

तेने स्तवुं नीचो नमीने, कहुं बुद्धि माने विवेक।

– अखेगीता, कडवंक –१

।आ। गुरु चरणे शिष्य आदरे, प्रेमे करी प्रणाम,

पद पंकज पावन सदा, नमो नमो परधाम । गु०शि०सं० ।

।इ। पेहेले सद्गुरु सेवरे प्राणी, जो अवसर मळ्यो आ वार ।

कृपा करिने फल आपे गुरु, तेणे सध टले संसार ॥

–अप० अखाना छप्पा पृ०२२

२. अ. मनमुखी मारग बिना अखा कथी कहां जाय ? आंख विहोणा अरण्य में

बिन रोध्या रोधाय ।।१८।। लक्षहीण अंग

आ. नगुरा की गत अजब है डेहेके आप डेहेकाय,

दुई कर्म खेले अखा, ना कछु नगुरा भाय ।।३।। नगुरा अंग

सच्चे गुरुओं से " झूठे गुरुओं " एवं उनकी धूर्तता को अलग बताने की दृष्टि से अखा ने उन्होंने " जीव गुरु ", " माया गुरु ", " कुगुरु " अभिधानों से वर्णित किया है। सदगुरु से " जीव गुरु " का अंतर बताने की दृष्टि से अखा ने दोनों की विशेषताओं का एक साथ उल्लेख करते हुए कहा है[१] कि कुगुरु के द्वारा बताया हुआ मार्ग सत्य से दूर एवं जन्म-जन्मपर्यंत भटकाने वाला होता है[२]। शिष्य के धन को हरनेवाले गुरु बहुत हैं परंतु शिष्य के संताप का हरण करनेवाले सच्चे गुरु विरल ही होते हैं। केवल धनहरण करनेवाले " कानफूँक-गुरु " अपने शिष्यों को भवसे पार नहीं करा सकते[३]। जिन तथोक्त गुरुओं को राम की प्राप्ति नहीं हुई है और जो शिष्य का केवल धनहरण करनेवाले हैं उनको अखा ने हिंसक पशु- " वरु " कहा है[४]।

" अहंत्याग " को भी आत्म प्रतीति होने का एक महत्त्वपूर्ण साधन माना है। अखा का कथन है कि एक मात्र " आप " के मिटा देने पर आकाश

---

१. अखा जिन सदगुरु मिलया, सो कर्यो निर्वाण।

[पण] जीवगुरु जाको मिल्या, सो ताके पाणी पहाण ।६। विवेक अंग।

२. कुगुरु मारग दूर है जन्म कोट परगाम

सदगुरु मारग सोहेला क्रमे क्रमे नीजधाम ।३। कुगुरु अंग।

३ अ. धन हरे धोखो नवहरे, ए गुरु कल्याण शुं करे ?

आ. तुलनीय: *

४. प्रापत्य राम कहे ते गुरु, बिजा गुरु ते लाग्या वरु । छप्पा

५. अखा ज्ञ मिटाया आपको।: दफून लाग्या आभ ।१५।

-रामपरिक्षा अंग

* गुरवो बहवस्सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
विरला गुरवस्ते ये शिष्यसंतापहारकाः।।

सर्व प्रकारकी संपत्ति की वर्षा करता है। तुंबा का दृष्टांत देते हुए अखाने कहा है कि जिस प्रकार तुंबा के मध्य में रहा हुआ गर्भ सूख जाने पर वह भवसागर को खुद पार कर जाता है और औरों को भी पार करा सकता है वैसे ही जिस आदमी का " अहं " सूख गया होता है वह स्वयं इस संसार रूप सागर से तैर कर औरों को भी तारता है[1]। वास्तव में हरि को प्राप्त करना अत्यंत सरल है बशर्ते कि जीव अपने मन, वचन एवं कर्म से " अहं त्याग " करे[2]। इस " अहंता " के नाश के लिए अखा ने सामान्य जनों के लिए साधना का राजमार्ग बताते हुए भक्ति, भजन और वैराग्य की आवश्यकता स्थापित की है[3]। " अहंता को " काई लगनेवाले " " कुद्रव्य " के समरूप बताते हुए अखा का कथन है कि कुद्रव्य रूव " आपा " को गला देने के पश्चात् ही अनुभव हो सकता है[अ,४]। अखा ने अनेक बार यह कहा है कि परमेश्वर के सामने अपनी " हार " स्वीकार करने पर अर्थात् " नाहं " भाव को अपना लेने पर उसको पाया जा सकता है।

---

१. अखा जो चाहे रामकुं तो तुं टल जा मतलकू
   सो तुंबा तारे तरे जब गर्भ गया बिच सूक ।।१।। प्रेम अंग, अ०रस, पृ०३७०

२. हरि मिलन काहु न वड़ा तीन बात की हार
   मनसा वाचा कर्मणा आप रहा किरतार ।।२।। वही।

३. अहंता टारन कु अखा भक्ति भजन वैराग्य

४. अ.कुंदन काई ना लगे कुद्रव्य काई खाय
   अखा अहंता दूसरी ताकुं काई खाय ।।६।। वही।

आ. " आप " ओगाली करे विचारा अनुभव वाघे अंग अपारा। अ०रस

अखा ने अध्यात्म साधना में इस प्रकार की " हार " को " महाविद्या " बताया है[१]। जप, तप, संयम, भक्ति आदि साधनाओं से भी इस प्रकार की हार को श्रेष्ठ बताया है[२]।

अखा का कथन है कि " मैं कौन हूँ ? " जगत रूप संसार क्या है ? " ईश्वर क्या है ? " आत्मा क्या है ? आदि का विचार करते करते भी आत्मतत्त्व की प्राप्ति हो सकती है। " आत्म तत्त्व विचारणा " का सहायक अन्य साधनों को एक मात्र " विचार " में ही समाहित किया है। " आत्म-तत्त्व विचारणा " ज्ञान तथा भक्ति में ऐक्य बताते हुए अखा का कथन है कि एक मात्र आत्मतत्त्व की " विचारणा " करने पर भी बिना भक्ति एवं ज्ञान की सहायता से हरि-प्राप्ति हो जाती है। इस प्रकार " सद् विचार " या " शुद्ध विचार " की श्रेष्ठता स्थापित करके अखा ने अध्यात्म मार्ग पर चलने-वाले यात्रियों के लिए सरल मार्ग की व्यवस्था की है। इस प्रकार की विचारणा से ब्रह्म विषयक ज्ञान प्रगट होता है, एक बार ज्ञान रूपी अग्नि प्रगट हो जाने पर उस " घट " के जन्म मरणादि जलकार खाक हो जाते हैं[३]।

---

१. हार वड़ी महाविद्या संतो हार वड़ी महाविद्या। भजन-२०, अ०रस, पृ०१३४

२. जीतनहारे बहोतों देखा हार्यो बराबर ना नावे
जोरे जीत्या वाको काल लतेड़े हार्यो " हर " में जावे।
जेन्ते जप तप संयमधारी, जेन्ते भक्त सब स्वामी
हार्या का नहीं नाम निशाना, बंध मुक्ति नहीं मागी। वही।

३. ब्रह्म अग्नि अंतर में लाग्या, जल गई माया रही नहीं जागा। पद-१७, अ०रस, पृ०१००
तुलनीय: ज्ञानाग्नि सर्व कर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा।
— श्रीमद् भ०गी० ४, ३७.

" ब्रह्म अग्नि " के द्वारा मायादि के जल जाने पर जीव का जीवणा राम की इच्छा के अनुरूप हो जाता है। अर्थात् जीव का अपना कुछ नहीं रहता है[१]। आत्मतत्व की उपलब्धि में ज्ञान को सब से निराली कला बताया है[२]। ज्ञान को " सूर्य रथ " की उपमा देते हुए अखा का कथन है कि जैसे सूर्य रथ में बैठनेवाले को सर्वत्र प्रकाश का ही अनुभव होता है वैसे ज्ञान को प्राप्त करनेवालों को समस्त सुख उपलब्ध होते हैं। दिपक से जैसे अंधकार नष्ट हो जाता है वैसे ब्रह्म ज्ञान से सकल प्रपंच टल जाते हैं। किंतु ऐसा ब्रह्मज्ञान सब लोगों को नहीं होता, अखा का कथन है कि जिस प्रकार हीरा, माणिक, मोती का भोगी कोई भाग्यवान ही होता है वैसे तत्त्वज्ञान का भोगी कोई विरला ही होता है। जिसका अंतिम जन्म होता है उसे ही ज्ञान की प्रतीति होती है। अखा का कथन है कि ज्ञान होने पर ब्रह्म स्वरूप हुआ जाता है। अखा ने स्वात्मज्ञान एवं गोविंद में अभेद तक बताया है – " ज्ञान गोविंद गोविंद ज्ञान "[३]।

---

१. राम के जीवणो जीवणा मेरा, जहां नहीं काल कर्म का घेरा । अ०स, पृ० १००
— पद - १७

तुलनीय: भिद्यते हृदयग्रंथी, छिद्यते सर्व संशय:

छियन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन दृष्टे परापरो।

२. ज्ञान कला अतिन्यारी सबन तें ज्ञान कला अति न्यारी ।

— पद - २, अ०स, पृ० ९३

३. अ. ~~अखाना छप्पा, कृतघ्न अंग~~ | अ०स, सं० प्रि० - २४, पृ० १४३

आ. ज्ञान छे हरिनुं निज रूप पण चेन विना क्षम कहीए भूप १ ४२३.

— छप्पा

अखा का कथन है कि जब तक जीव को इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता तब तक उसका तीर्थादि में दौड़धूप करना बना रहता है। " ज्ञान " को " सिंह " और भ्रम " को " हाथी " बताते हुए अखा का कहना है कि ज्ञान रूपी सिंह के दहाड़ने पर भ्रम रूप मदमस्त हाथी भाग जाता है।[१]

अखा ने अपनी बानी को भक्तिमार्गीय एवं ज्ञानमार्गीय शब्दावली में अभिव्यक्त करने के साथ-साथ योग मार्ग के पारिभाषिक शब्दों में भी व्यक्त किया है। यद्यपि उन्हीं ने योग के विभिन्न अंगों, चक्रों, एवं नाड़ियों के विधविध क्रिया-कलापों का विस्तृत वर्णन नहीं किया है तथापि " ओमकार की उपासना ", " सूरत-नूरत का संधान ", सो हम् जाप ", " उल्टी चाल " आदि का स्वीकार एवं वर्णन अवश्य किया है। ओमकार की साधना के द्वारा परब्रह्म को प्राप्त करने की बात अखा ने कही है।[२] उनका कथन है कि प्रणव शब्द " ओमकार " का लक्ष्य करने पर " आप " - आत्मा को पाया जाता है। जिसने इस " ओम् " को लक्ष्य किया हो वही " आत्मा " को समझ सकता है।[३]

---

१. ज्ञान बिना भटक्यो गिरि गह्वर, ज्ञान बिना सो पराधिन नचे
ज्ञान बिना मंजन मलधारी ज्ञान बिना काया के केश खंचे।
जब ज्ञान गरज्यो संग सोनारा भाग्यो मर्म मंगल मद मंचे।सं०प्रि० ५५

२. तुलनीय: अ. ओमिति ब्रह्म। ओमितिदं सर्वम्। तैत० १:८
आ. ओमित्येतदक्षरं परब्रह्म। तदेवो पासितव्यम्।तार सारोप०
१-२७

३. अ. ओम शब्द जिनु परखीया तीनुं पाया है आप
षाट षाटपट करते रहे, अख्खा पाया अमाप।।३ अखाजीनी साखीओ
-- शं०वि०अंग

आ. कोई ज्ञानी जानत ज्ञान यह जिनुं लक्ष्य किया ओमकार
शब्द एक में निपजे अखा। क्यों पची मरे संसार। वही०

अखा ने अपनी रचनाओं के मंगलाचरण में भी इस ओमकार का लक्ष्य किया है[1]। अखा का कथन है कि निगमागमादि ने जिस परब्रह्म को " शब्दातीत " वर्णित किया है और बड़े बड़े योगीजन जिसका ध्यान करते रहते हैं वह परब्रह्म स्वयं योगी के अंतर में " सोऽहम " " सोऽहम् " बोला करता है[2]। योगी जब सुरति को निरति में मिलाता है तब उसका चित्त "चिद्रूप" हो जाता है[3]। एक स्थान पर अखा ने कहा है कि सुरति जब उलट फिरती है तब नीर का बबुला नीर में मिल जाता है सुरति दशों दिशा में व्याप्त हो जाती है और "पूरन-पद " की प्राप्ति होती है। अखा का यह भी कथन है कि " उलटि चाल " " उलट फिरने " से अर्थात् बहिर्मुख इंद्रियों को अंतराभिमुख करने से भी आत्म-

---

१. अ. ओम नमो आदि निरंजन राया जाहां नहीं काल कर्म अरु माया ।
-ब्र०ली० मंगलाचरण अ०र०
आ. ओम नमो त्रिगुणपति रायजी जे सर्वे पहेला पूजाय जी ।
- अखेगीता, मंगलाचरण

२. शब्दातीत निगम मुख गाये जाको योगेश्वर ध्यान लगावे
वामें हम हम भीतर बोले । पद-६, अ० रस, पृ०५४

३. अ. साधी सूरत नूरत की निश्चे, आप न देखत और तना
निराधार धरती ना धारे चित्त चिद्रूप भया अपना। पद-८, वही, पृ०५६
आ. नीर पपोटा नीरमें सुरत्यदशदिश जाय । अखा सुरत्य उलटी फिरी
तब पूरन पद पाय ।१२। प्रत्यक्ष, अ०र० १८३
तुलनीय: यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता ।
योगिना यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मन:।।
– श्रीमद् भ० गी० ६: १९.

तत्त्व की अथवा " परम पद " की प्राप्ति होती है[१]। अखा ने कहीं कहीं पर-ब्रह्म या आत्मतत्त्व के अर्थ में " शून्य " शब्द का भी प्रयोग किया है। अखा ने मायारहित परब्रह्म का विभिन्न शब्दावली में वर्णन करने के प्रयत्न करते करते हैरान होकर उसे " शून्य " कह दिया है। किंतु अखा द्वारा प्रयुक्त " शून्य " का अर्थ शून्यवादियों द्वारा गृहीत अर्थ से भिन्न है[२]।

आत्मप्रतीति करने के शास्त्र सम्मत इन विभिन्न उपायों ~~द्वारा~~ के अतिरिक्त अखा ने सामान्य जन को आत्मबोध या परब्रह्म की प्रतीति करने की साधना के राजमार्ग का भी निर्देश किया है। इन उपायों में खलता, ~~त्याग~~, भय, भ्रांति, लज्जा, निंदा आदि के त्याग को महत्त्वपूर्ण गिनाया है[३]।

---

१. उलट फिरे सोई निजधार पावे नहीं तो मिथ्या जनम गमावे।
-पद-४ अ०रस, पृ०१४

२. अ.......... माया उपर शून्य

तेमां परिपूर्ण छे रे त्यां हां नहीं पाप ने पून्य। पद -१२६
- अखानी वाणी

आ. शून्य अखा कृत सब सुना, " सुन लखे " सो लेखन हारो।
- सं०प्रि० ७१

३. अ. पलकुं भी हरि उद्धरे जो छोडे खलबान।

खलता छूट्या बिन अखा। नाम नहीं नादान। अ०रस

आ. भय, भ्रांति, लज्जा अखा। स्तुति निंदा जीव धर्म।

जा घटते पंच गये, सोहि राम पद पर्म।६। अनुभव शब्द अंग, अखयरस, पृ०३६१.

उपर्युक्त विभिन्न साधनों के परिशीलन के आधार पर कहा जा सकता है कि अखा ने अपने समय के गुजरात में प्रचलित और एक दूसरे से विरुद्ध माने गये उपासना के विभिन्न साधनों की एकता स्थापित कर उनमें समन्वय की स्थापना करने का ऐतिहासिक एवं मार्गसूचक कार्य किया है। भक्ति, ज्ञान एवं योग की एकरूपता बताते हुए अखा का स्पष्ट कथन है कि ये तीनों एक ही पदार्थ के भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं[१]।

---

१. भक्तिज्ञान अने वैराग्य, पदार्थ एक त्रण नाम विभाग ।
तेने अजाण्यो करे जुजवा, समज्या ते ते एक ज हुआ ।। ४५३ ।

-छप्पा

नारी चित्रण

अखा की रचनाओं में उपलब्ध नारी - विषयक कथनों को दो प्रमुख भागों में प्रस्तुत किया जा सकता है - अध्यात्म पंथ में [१] आदर्श स्वरूप और [२] बाधक स्वरूप । आदर्श स्वरूप नारी चित्रण में " प्रतिव्रता और सती " तथा " परकीया " और " जार " चिंतन करनेवाली स्त्रियों के चित्रों का उल्लेख किया जा सकता है । अखा ने अपनी रचनाओं में पतिव्रता की - प्रशंसा मुक्त कंठ से की है । प्रारंभ में ही प्रियतम पर अपना तन न्योछावर कर देनेवाली प्रतिव्रता और "सती नारी" की भूरि भूरि प्रशंसा[१] करने के कारण अखा पर "नारी निंदा" का आक्षेप नहीं लगाया जा सकता । अखा की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि प्रतिव्रता नारी लौकिक दृष्टि से सामाजिक शील की प्रतिनिधि है और आध्यात्मिक दृष्टि से उसका प्रेम जीवात्मा के उस प्रेम का प्रतीक है जो परमप्रिय परमात्मा के सान्निध्य के लिए विरहाकुलता के रूप में दिखलाया जाता है । चूंकि अखा प्रेमलक्षणा भक्ति के प्रशंसक थे उनमें परकीया और जार की चिंता करनेवाली नारियों के भी सुंदर चित्रण मिलते हैं । ये चारों प्रकार की स्त्रियां प्रेम मूला भक्ति के मार्गदर्शक उदाहरणों के रूप में

---

१. अ. साच सती और निज भक्त दोनुं की एक टेक

तन मन तो पहले दिया, अब का करे अखा विवेक ।२३।

-भो०भ० अंग

आ. सती सोहागन है सदा जिन्हे जान्या पियु संग ।

असती रांड हुई जाही पलपल पलटे ढंग ।५ ।

-- भक्ति अंग ।

समस्त भक्ति साहित्य में संमान्य है । इन आदर्श स्वरूप नारी चित्रों के साथ-साथ अखा के समाज में दृश्यमान कुलटा[1], पुंश्चली[2], दुहागन[3] एवं निर्धना[4] स्त्रियों के भी चित्र यत्र तत्र मिलते हैं । अखा ने इन चार प्रकार की स्त्रियों को भक्ति-तत्त्व से रहित एवं उस मार्ग की बाधक रूप में निर्दिष्ट किया है किंतु इस प्रकार के चित्रों की अखा - काव्य में कमी है ।

---

१. मुख प्यारो महाराज है और दिल में प्यारो दाम।
ज्युं कुलटा प्यारो स्नेही है, पण प्रसिद्ध पियु को नाम ।२।
— निंदक अंग

२. एक पलक न भाये पियु बिना जो मिल्या होय न्हावसुं नेह।
ए तो पुंश्चली बार फिरे अखा ? दे दुर्जन को देह ।८ ।
— खल अंग

३. एकनर की सब नारीयां, भाग्य हीणी वड भाग ।
असती का नर नित्य मरे, सती सदा सोहाग ।। ६ ।।
— सती अंग

४. आत्मज्ञान उपज्या बिना माया मानी सांच।
निर्धन की नारी अखा ? सजे कथीरो कांच ।१।
— चेतना अंग

सहजाचरण

अखा द्वारा उपदिष्ट " सहजाचरण " की युगानुरूपता के रहस्य को अच्छी तरह आत्मसात करने की दृष्टि से " द्वितीय अध्याय " में विवेचित " गुजरात की धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का पुन: स्मरण करना होगा । संक्षेप में कहा जा सकता है कि उस युग खंड विशेष में गुजरात की धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थिति किसी भी जागरूक [Awakened] एवं आत्मनिष्ठ [Self - Centred] मनुष्य के लिए अतीव चिंताजनक थीं । धर्म एवं भक्ति का सच्चा स्वरूप लुप्त हो चला था । धर्माभास का ज्वार बढ़ता जा रहा था । सत्य के स्थान पर मिथ्यात्व की पूजा व्यापक रूप से होने लगी थी । धर्म संप्रदायों के मिथ्याचारों के पालन एवं विलासपूर्ण उत्सवों के मनाने में जनता परम धर्मलाभ समझती थी । समाज ब्राह्मण- शूद्र, शिया- सुन्नी आदि विभिन्न जातियों के जटिल रूपों में विशृंखलित था । समाज में प्रवर्तित गुलाम, सती, बाल विवाह, आदि की प्रथा में तथा वेश्या-संग मद्यपानादि की विभिन्न कुप्रवृत्तियाँ किसी भी सहृदय मनुष्य की आंखों को बरबस खींच ले सकती थीं । ऐसी परम सोचनीय परिस्थिति के समय पर अखा का उदय हुआ । स्वानुभूत के प्रकाश में अखा को यह सब अंधकारपूर्ण एवं भ्रष्ट दिखाई पड़ा । अत: उनकी आत्मा विद्रोह कर उठी और मिथ्यात्वपूर्ण धर्माभास एवं समाज के खोखलेपन के प्रति उन्होंने " स्वानुभूत सहज साधना के दर्शन " को अपनी समर्थ भाषा में अभिव्यक्त करने का उपक्रम किया ।

अखा ने मनुष्य को अपने दूषित तन-मन के विकारों का परिष्कार कर उन्हें शुद्ध करने का उपदेश दिया है। अखा ने गोरे शरीर पर लगे हुए मैल को दूर करने का जो उदाहरण दिया है उससे यह वस्तु और स्पष्ट हो जाती है[1]।

अखा का कथन है कि मन की गति को पलटाने पर एवं हृदय को निर्मल करने पर ही " राम " का अनुभव हो सकता है[2]।

मनुष्य का मन समस्त प्रपंचों का स्थान होने के कारण अखा ने विशेषकर " मन के निर्मलीकरण " तथा " हृदय की निष्कपटता एवं शुद्धि " पर बल दिया है। इसके अतिरिक्त बड़ी बड़ी आशाओं के लुभावने पाश में फँसकर जीवन को निरर्थक गँवा देने की अपेक्षा परमात्मा पर दृढ़ भरोसा रखकर आशा एवं प्रवृतिरहित जीवनयापन करने का उपदेश दिया है। आशारहित जीवनयापन करने को अखा ने अध्यात्म मार्ग का बड़ा साधन माना है[3]। अखा

---

१. कुजा पावणा दोह्ला पण आपा पावणा सह्ल ।
अंग तो गोरा है अखा ! पण उतर्यो चाहिए मैल ।।
-श्री चानक अंग

२. मन की गति फरती नहीं तोलुं न सरे काम ।
सीना साफ हुए बिना अखा ! रहे कहां राम १ ।। ५ ।। चानक अंग

३. नैराशी साधन वडो...... । निराश अंग.

का कथन है कि बिना निराश हुए "मूल स्वरूप" के उद्योत की प्राप्ति नहीं होती है क्योंकि आशापाश में फँस कर मनुष्य अपने "चैतन्य चिद्रूप" को भूल जाता है। अत: अखा ने आशा को दूर कर अपना "मूल अज" स्वरूप प्राप्त करने के लिए कहा है। उनका यह भी कथन है कि आशापाश में बंधने पर ही मनुष्य "जीव" उपाधि को धारण करता है[1]। "दैव में परम श्रद्धा" रख कर अपनी तरफ से कुछ भी नहीं करने की बात कही है। अखा का कथन है कि जैसे समय होने पर वृक्ष पर फल अपने आप लगते हैं वैसे समय आने पर ही इच्छित वस्तु की अपने आप ही प्राप्ति होगी। ईश्वर के विधान के प्रति अविश्वस्त होकर वस्तु को असमय प्राप्त करने के प्रयत्न न कर "अजगर के साक्ष्य" को समझकर उत्पात रहित जीवन यापन करने की बात कही है[2]। "नाम जाप" की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए अखा का कथन है कि राम राम जपने से जीव स्वयं "श्याम सुंदर" या "राम स्वरूप" हो जाता है[3]। राम रूप "तारक मंत्र" के जाप द्वारा वस्तु- परब्रह्म में जल- नमकवत् मिल जाने के लिए कहा है[4]।

---

१. आशा गई तब अज भया, जे कोइ पूरण ब्रह्म।
आशा बांध्या जीव है, अखा समझ ले मर्म ।७। अधमांग

२. अ. जो जन होवे रामका, तो राम भरूसा राख।
क्या कुबुद्धि भटक्यो फिरे, तब अजगर की साख ।।१।। भरोसा अंग

आ. अजगर रहे आनंद में, न करे आश उमेद, सो पशु तें पुरूष नीच है,
जे अखा, न पावे भेद ।२।वही०

३. राम ही राम जपे सोही राम है, नाम जपे सो श्याम सुंदर। सं०प्रि० ६३

४. राम तारक मंत्र एह ते दृष्टि अभाव तो लक्ष।
वस्तु ए वस्तु मली ज्युं जेम लवण अंबु मां ज लक्ष। पद-१२
-अ०वा० पृ०

अखा का सुझाव है कि मेरा किया कुछ होता ही नहीं है। जो कुछ होता है वह एक मात्र " नारायण " के द्वारा ही होता है। अर्थात् नारायण स्वरूप ईश्वर ही सब कुछ है " इस प्रकार की एक विशेष मनोवृत्ति बना लेने पर अंततोगत्वा मनुष्य को स्वात्म प्रतीति होती है।[१]

" देह की क्षणभंगुरता " का बोध कराने के लिए अखा ने " नौकायान " में की तरकारी,[२] पानी का ओला[३], वायु का बघुला,[४] चंद्रकला[५] आदि के दृष्टांत दिये हैं।

---

१. फलता है निश्चय अखा आदर आतुर संग ६
   राम सदा भरपूर हैं, जो लागे मन का रंग ।३। चानक अंग

२. तरकारी ज्युं वहाण की हरी घड़ी दो चार
   ऐसे काया सब अखा । मत राखे तु प्यार ।।६।।
   — हैरान अंग, अ० रस पृ०

३. जैसे ओला नीर को पड़त पड़त गीर जात ।
   अखा ऐसे देह है ताकी के तीक्ष वात ।।७।। वही० पृ०

४. चढ़त बघुला वायु का थोरे में हि विलाया ।
   इतने पर इतनी कहा, अखा तु मत घुमराय ।।८।।
   —वही०

५. चंद्रकला त्युं देह है, पूरा तपे एक रात
   चौदस पखवासंग है अखा । समज कर वात ।।१० ।
   — वही०

विषय वासनाओं के त्याग के द्वारा वैराग्य-प्रधान जीवन व्यतीत किया जा सकता है । प्रस्तुत मार्ग में इस प्रकार के वैराग्यपूर्ण जीवन को अखा ने अनिवार्य माना है । इसे ही " सहज वैराग्य " कहा जा सकता है । "निष्काम कर्म" तथा "करनी एवं कथनी" में " एकता " का निर्वाह किये रहना भी प्रस्तुत साधना मार्ग की महत्त्वपूर्ण शर्त है । सर्व में एक ही आत्मतत्व का विचार करना और सर्व को राम की मूर्तियों के रूप में वंदन करने को "सहज विचारणा" एवं " सहज ज्ञान " कहा जा सकता है । " उलटी चाल " अखा की सहज साधना की प्रधान विशेषता है । उन्होंने अपनी प्राय: सभी रचनाओं में इसका विभिन्न रूपों में वर्णन किया है । अपने पदों में इस विषयक अखा का कथन है कि जो "साधक " उलट[१] " फिरता है - वही अपने " मूल " घर को प्राप्त कर सकता है ।

साखियों में भी अखा ने कहा है कि मन की गति को उलटाने पर मनुष्य संसार से पार हो जाता है[२]।

राम का सच्चा भक्त समाज के सभी आचार व्यवहारों से " उवट[३] "

---

१. उलट फिरे सोही निज घर पावे । पद-४, अ० रस, पृ० ९५

२. मन की गत उलटी फिरे सोनर पावे पार ।१।

— चानक अंग

३. उवट चले जन राम का, ज्यांहां बन बस्ती दो नांहि

खट की खट पट में अखा ! कबहु मन नहीं वाहि ।१०।

— अलख अंग

चलता है। " संत को माया लेपे नाहीं ", " संत भये लौं लीनो ", " संत के आगे माया अधीना,[१] " कहकर संतों का महत्त्व बताते हुए अखा ने " सत्संगति " करने के लिए पुकार-पुकार कर कहा है। अखा की रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने साधु-संतों के महत्त्व का प्रतिपादन ही नहीं किया बल्कि सत्संगति को सहज साधना का प्रधान तत्त्व भी बताया है। अखा का स्पष्ट कथन है कि अध्यात्म मार्ग में बिना सत्संगति के मुमुक्षु आगे बढ़ नहीं सकता। "सत्संग" अध्यात्म पथिक के लिए एक अनिवार्य एवं करणीय कार्य है। अखा का स्पष्ट कथन है कि किसी ज्ञानी की सत्संगति के द्वारा ही मनुष्य को ज्ञान होता है[२]।

अखा में " दैन्य-- नम्रता " भी कूट-कूट कर भरी है। अखा ने अपने अवगुण नहीं देखने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की है। अखा ईश्वर के प्रति " दास्य भाव " में भी विश्वास रखते हैं। उन्होंने कहा है कि मैंने वेद - पुराणों को पढ़-पढ़ कर देखा तो ज्ञात हुआ की " दास " होने पर कोई भक्त दुःखी नहीं रहा है[३]।

इस प्रकार अखा की रचनाओं में उपलब्ध " सहज साधना " के विभिन्न रूपों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि अखा वास्तव में अहर्निश

---

१. अखायरस : भजन -१८ पृ०१२२

२. अखानी वाणी, पद - ५१

३. अखाना छप्पा, फुटकल अंग - ७५१

सहज दशा में मग्न रहनेवाले स्वानुभवी संत कवि थे ।

अखा ने संसार से संन्यास लेकर वनगमन करनेवालों के के प्रति तीव्र तिरस्कार व्यक्त किया है[१]। अत: कहा जा सकता है कि अखा द्वारा उपदिष्ट मार्ग में "सांसारिकता एवं आध्यात्मिकता का समन्वय" है। अखा का कथन है कि समस्त विश्व के जन्म-मरणादि के विभिन्न क्रिया-कलाप अपने आप होते रहते हैं[२]। दृश्यमान व्यवहार और कुछ न होकर श्री हरि का "सहज विलास" मात्र हैं। अखा ने बिना किन्हीं कृच्छ्र साधनाओं के अपने पियाजी को और अपने भूले हुए मूल पद को सहज साधना के द्वारा सहज रूप में प्राप्त कर लिया है[३]। इस पद को प्राप्त करने पर षड्दर्शनों की मथ्था पच्चि करना छुट गया

---

१. जे को मुक्ति चाहत अखा ? सो वस्ती छोडी वन जात ।

२. सहज काया शरिर सब सहज अखा मर जाय

सहज नीमिडा होते है, तो ताकु सबें बलाय ।।

— सहेजांग – ८

दाम चाम सब सहज के, सहज हुआ परिवार

अखा समजे सो सुखी, नहीं तो पिट पुकार ।

— सहजांग

३. अ. किया कराया कछुबि नांही, सहेजे पियाजीकुं पाया

देश ना छोडया वेश ना छोडया, ना छोडया संसारा । पद –१३

आ. ना जप तप ना संयम कीना, अवाच्य रस मुख बिन पीना/पद–१५

है और कोई और ही " पैंड़ा "-स्थान पा लिया है[१]। स्वयं को " सहज " का " महा विचार " प्राप्त होने पर अखा की स्थिति "सोने के नीर में भी निर्लिप्त भाव से रहनेवाले कमल की-सी" हो गई है[२]। वेद एवं अन्य शास्त्रीय ग्रंथो में भी जो तत्त्व दृष्टिगोचर नहीं होता है वह अपने आप अखा के घट में प्रगट हुआ है[३]। अखा का कथन है कि मेरे " शाह " ने मेरे घर अपने आप चले आ कर मुझे - गलबाँही देकर सौभाग्यवती कर दिया है[४]।

अखा की सीख है कि " सहज " को समझ लेने पर किसी बात की कमी या पीड़ा नहीं रहती है[५]। क्योंकि " सहज " की ~~कि~~ समझ बड़ी " निधि "

---

१. सहजे सहजे बनि अखा भूला आया ठौर।
खटकी खटपट खप गई, कोई पेंडा पाया और ।
-विदेहांग -२०

२. कमल उपर का उपरे, जो सोने का नीर होये।
ज्युं कमल त्यूं है अखा बहत है गंबी तोय ।।२१।।
-म०वि०, अ०रु०, पृ०३२६

३. सहजे सहजे साजन घर आया, जो वेद किताबुं नाहीं लिखाया ।

४. अगम अगोचर कहि ते सारे, पढ़ते पढ़ते पंडित हारे
सो सुरिजन सुध लीई रे सवारे ।
साध आवत हुं गली गली, मेरे शाह नें कीती सोहागी । जकड़ी-२०
- अखायरस पृ० ३१

५. मनुआ मत उलटा फिरे साची सुणा ले शिख
सहज जाण्या विन अखा ! कवहु न टले बीक ।१४।
-सहेज अंग

होती है[१]। इस सहज की शक्ति को अनंत[२] बताते हुए अखा का कथन है कि सहज रूप "अमल" का भोगी ही इस " हाल " को समझ सकता है[३]। यह सहज " हाल " या " सहज भोग " अहंता के दूर होने पर ही हो सकता है[४]। "सहज आनंद" का भोगी ही " साहब का लाल " हो सकता है[५]। राजा होने पर या रमणी के साथ रमण करने पर या मृगछाला ओढ़ने पर अर्थात् सुख दुःख की विभिन्न दशाओं में जो सहज भाव से रह सकता है वही " साहेब का लाल " हो सकता है[६]।

---

१. अखा समज्या सहज कु, तो कमी नहीं कोई बात
  समझे सो बड़ी निध है, बिन समझे सब जात ।१६। सहज अंग

२. अनंत शक्ति है सहज की, जाके गणित न माप ।१८।

३. सहज अमलकु जे भखे, अखा सो जाणे हाल ।२०।

४. अखा अहं छुटे बिना, न होय सहज का भोग ।२१

५. सहजानंद को भोगवे अखा, सो साहेब का लाल ।१।

– लाल अंग

६. राज करे के रमणी रमे, के ओढ़त मृगछाल
  ज्युं रहे त्युं सहेज में, सो साहेब का लाल ।१८ ।

– लाल अंग

संत लोग "लोक मंगल की भावना" से ओत प्रोत होने के कारण समाज में प्रवर्तित अंध विश्वासों, मिथ्याचारों एवं बाह्याडंबर एवं समाज की वर्णाश्रम व्यवस्था की जटिलता को देखकर वे केवल तिलमिला ही नहीं उठते थे प्रत्युत उसके सुधार की भावना से प्रेरित होकर आदर्श एवं सदाचार के अनेक विधान भी करते थे । यहाँ अखा की रचनाओं में प्राप्त एतद्विषयक कथनों का सूचित विभागों के अनुसार अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

अखा के समाज में विशेषकर " अवतारवाद ", " पुनर्जन्म " एवं " कर्मवाद " के विषय में बड़ा अंधविश्वास था । " पंचम अध्याय " में यह बताया गया है कि अखा ने अपने ब्रह्मानुभव को विभिन्न अभिधानों के द्वारा व्यक्त किया है किंतु इसका मतलब यह नहीं है कि उन्होंने उन उन अभिधानों के विषय में पुराणादि में निरूपित कथाओं एवं अवतारों का समर्थन किया है । अर्थात् अखा द्वारा प्रयुक्त राम, कृष्ण, विट्ठल, गोविंद, नारायण आदि सभी वैश्णव अभिधान ब्रह्म के पर्याय मात्र हैं । अखा का कथन है कि स्वयं राम भी विधि के आधीन थे और इसी कारण उनको बनवास भुगतना पड़ा[1] । इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को भी अखा ने माया में ही माना है[2]।

---

१. अखा काहा संस्कार था, जब बन भुक्ता रघुनाथ ।८। पूर्वजन्म, अ०स. पृ०१८०

२. जाये तीन सुत जगत कारन, सत्त्व रज तमसादि भये ।
रजो गुन सो आप ब्रह्म, तमो गुण सो रूद्र है ।
सत्त्व गुण सो विष्णु आपे सगुन ब्रह्म पहुंची चहे ।
-ब्र०ली० ३ पृ० ८७

किंतु कहा जा सकता है कि अखा का उद्देश्य अवतारों या पैगम्बरों की निंदा करना नहीं था । उनका उद्देश्य था सत्य का प्रचार करना । अंध श्रद्धा के कारण अवतारों में ही बद्ध जनता के ~~मिथ्या~~ भ्रम का प्रत्याख्यान करने के लिये ही उन्होंने अवतारवाद के विरूद्ध आवाज़ उठाई[१]। अखा को निर्लेप, निराकार, अज, अनंत ऐसे ब्रह्म का स्वानुभव होने के कारण उन्हें अवतारवाद की मान्यता जँचती नहीं थी अर्थात् वे अपने समय में प्रचलित सगुण निर्गुण के झगड़े से ऊपर उठ गये थे । अतः उन्होंने अपने " राम " को " आवन जावन की जंजट से रहित " एवं " सदा भरपूर " रहनेवाले " परब्रह्म स्वरूप " ही बताया है[२]। चूँकि अखा ने समाज में दृढ़रूपेण घर की हुई अवतारवाद की मान्यताओं का विरोध किया है । किंतु अवतारों के रूप में ~~भक्तों पर~~ भगवान ने समय-समय पर भक्तों पर जो अनुग्रह किया है उसे वे भुला नहीं सके हैं । उन्होंने भगवान के ऐसे कार्यों - उनकी लीलाओं का अनेक स्थान पर उल्लेख किया है । रामचंद्रजी के भीलनी " शबरी " के झूठे बेर " खाने की बात का अखा ने निःसंकोच होकर उल्लेख किया है[३]। इसके अतिरिक्त अखा ने ध्रुव, प्रह्लादादि के प्रसंगों

---

१. कोई कहे राम होइ गया, कोइ कहे अब लगो अवतार ।

पण प्रत्यक्ष राम गावे अखा । ता पर मैं बलिहार ।१।

— पत्यक्ष अंग

२. हे लीला सब साँई की फूल्या फाल्या राम

ना हि सो आवन जानको भूतन का विश्राम ।।६।।

—स्वे अंग

३. दृष्टव्यः सं० प्रि० २२, अ०रस पृ०१४३

का बड़े ही आदर के साथ वर्णन किया है[१]।

पुनर्जन्म की मान्यता का तर्कजन्य प्रत्याख्यान करते हुए अखा का कथन है कि जबसे यह जगत उत्पन्न हुआ है तबसे लेकर आज तक यह एक ही-ब्रह्म-स्वरूप है। इसके पहले जब कुछ था ही नहीं तब किसके पूर्वजन्म की बात कही जाय[२]?

मूर्ति पूजा

मूर्ति पूजा के प्रति भी अखा को घृणा थी, अखा ने ~~अन्यत्र~~ मूर्तिपूजकों का मजाक उड़ाते हुए कहा है कि वास्तव में मूर्ति को गढ़नेवाला तो मनुष्य ही है, आश्चर्य है कि वही मनुष्य अपने द्वारा गढ़ी हुई प्रतिमा के पास तरह तरह की याचनायें करता है[३]। अखा ने ऐसे आदमियों को "अंध" कहा है। मंदिर में स्थित मूर्ति के पीछे जाकर इसे बाँहों में भरने का प्रयत्न करनेवालों का उपहास किया है[४]। अखा का कथन है कि भगवान की पादुका, चित्र आदि की सेवा

---

१. दृष्टव्य : मोली भक्ति अंग -२१ अ०रस पृ० २०६

२. जब उपज्या तब पहेल का, ता आगे कछु नांहो
तो पूर्वजन्म संस्कार की अखा कौन चलाई ।।१।।
-- पूर्वजन्म अंग, अ० रस पृ०

३. सजीवाए नजीवाने घढयो, सजीवो केहे मने कांक दे
अखो भगत एम पूछे के तारी एक गई छे के बे ?

४. देहरा पाछळ देवने भरतो बीसे बाथ। आरोगा अंग।

करने में शरीर में ही रहे हुए "हीरा" को गँवा दिया जाता है[1]। और उसके स्थान पर विषय-वासना एवं भ्रम की ही उपासना होती है[2]।

जाति प्रथा

अखा का हिन्दू समाज ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय एवं शुद्र जातियों के जटिल बंधनों में ग्रस्त था; शुद्रों की स्थिति अतीव दयनीय थीं। वे अछूत समझे जाते थे और विशेष कर ब्राह्मण एवं वैश्य लोग उनसे नफरत करते थे। अत: "छूताछूत" को शुद्रों की "बेटी" कह कर उसके दृढ़ पालन करनेवाले -ब्राह्मण एवं वैश्यों को उसके "पति" बताकर दोनों के ऊपर अखा ने करारा व्यंग किया है:

आमडछेट अंत्यजनी जणी ब्राह्मण वैष्णव कीधा धणी
बारे काळ भोगवे ए बेव, सौने घेर आवी गई रहे। छप्पा - १

इस दशा का अखा ने बड़े सतर्क और विचाबूध होकर अवलोकन किया। "आत्मचिंतन" की अतल गहराई में गोता लगाकर उन्होंने श्वान, श्वपच, गौ, एवं ब्राह्मण-सभी में एक आत्मतत्त्व का अनुभव कर डंके की चोट कहा कि इनमें से न तो कोई नीचा है, न तो कोई ऊँचा[3]। अखा ने सुवर्ण और उसके

---

१. चेतनकुं जाणे नहीं पादुका पूजे वस्त्र
हरि हीरा रहे नहीं गया सेवे कागद पत्र ।२।
— भरम भक्ति

२. हरिभक्ति आई नहीं आया विषय और भर्म
हीरा खोया आप में रहा सराडे भ्रम ।।४ ।।
— वही०

३. एक मशाला है अखा ? श्वान, श्वपच, ब्रह्म, गाय
एक ठौर उपजे रामे और मूरख मरम न पाय ।।१३ ।।
— चेतना अंग

निर्मित अलंकारों की एकता का दृष्टांत देकर ब्राह्मण, क्षत्रियादि की तात्त्विक एकता का निरूपण किया है[१]। अखा ने ऊँच नीच के भेद के मिथ्यात्व का तर्क-जन्य खंडन करते हुए कहा है जिस प्रकार सूर्य को छूने में लम्बे और ठिगने मनुष्य का भेद व्यर्थ है वैसे ही आत्म तत्व की दृष्टि से समाज के वे भेद निकम्मे है[२]। अखा का कथन है कि " उच्च वर्ण को भूषण " और " निच वर्ण को दूषण " गिननेवाले लोग अधर्म के कीचड़ में गर्क होकर राम से दूर रहते हैं। देह और चाम को महत्त्व देकर वर्णाश्रम में माननेवालों को राम[३] की प्राप्ति नहीं होती हैं[४]।

बाह्याचारों का विरोध

जैसा कि विगत परिच्छेदों में निरूपित किया गया है कि अखा कृच्छ्र साधनों के उपयोग के स्थान पर " सहज जीवन " एवं " सदाचारता " के पक्षपाती थे। उन्होंने तत्कालीन हिंदू समाज में मन की शुद्धि एवं आत्मप्रतीति के स्थान पर कड़े होकर जमे हुए कर्मकांडों को देखा। समाज की इस दशा से अतीव विक्षुब्ध होकर उन्होंने तीर्थ, यात्रा, व्रत, तप, वेद, शास्त्र आदि के

---

१. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र : विध विधना विचार
   सार जोतां सोनुं एक छे, एना घाट घड्या बेचार। पद ३३, अ०वा०

२. उंच वर्ण निकट नहीं और नीच वर्ण नहीं दूर।
   ज्युं नर लंबा और ठींगणा, कोई छुपत नहीं सूर।
   - समदृष्टि अंग

३. उंच को भूषण गण्या, दूषण कीना नीच
   रामन पावे सो अखा १ कल्या कर्म की कीच ।।३।। समदृष्टि अंग

४. वर्णाश्रम जिनुं देखिया, सो नहीं देखे राम
   अखा हरि कैसे मिले, जे देखे देह चाम ।।१२।। प्रतीत अंग ।

अंधवत् अनुसरण का भंडा कर तीव्र विरोध किया। हिंदुओं के साथ-साथ तत्कालीन इस्लाम में उपदिष्ट रोजा, नमाज़, इबादत, शेख, फकीर आदि का भी विरोध किया है। अखा ने "छप्पा" की तरह "साखियों" में भी तीर्थ-प्रतितीर्थ में दौड़-धूप करनेवालों का विरोध किया है। उनका कहना है कि परब्रह्म, काशी, प्रयागादि स्थानों में स्थित न होकर घट-घट में व्याप्त है। अनेक तीर्थों में शरीर को मलमल कर नहाने से अंतर का मैल नहीं घटता। अखा ने "तनरूप तीर्थ में आत्म-देव" की उपासना करने का सुझाव दिया है। उनका कथन है कि ब्रह्म साधना के लिए अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त पंथ के वेश - टेकों में ही पक्का रहनेवाला अज्ञानी, दंभी या जड कर्मवादियों की भी खिल्ली उड़ाई है। किंतु कहा जा सकता है कि खिल्ली उड़ाने में भी निखिल पथभ्रष्ट लोगों के प्रति संत के हृदय में निहित करूणा की भावना काम करती थी। अखा का यह भी कथन है कि आत्मज्ञान नहीं होने पर मनुष्य पत्थरों की पूजा किया रहता है और गीत गाया करता है[१]। फकिरी को भाड़ते हुए अखा ने कहा है कि जो "स्व" में केन्द्रित होकर अपने भरन-पोषण की फिक्र से मुक्त हो जाता है वही सच्चा फकीर होता है -पेबंदलगी कंथा को पहननेवाला नहीं[२]। इसके अतिरिक्त वेद एवं कुरान का

---

१. प्रत्यक्ष के परमान बिना नर धावत धूपत तीरत पाती

प्रत्यक्ष के परमान बिना नर नाचत गावत होवत राती। सं०प्रि० ८

२. गई किंकर सों फकीर हुआ, कछु पेबंद में पियु नाहीं पेठा।५१।

- भूलना, अ०रस. पृ०६८

अध्ययन करनेवाले जड़ कर्मवादियों को भी डाँटा है। किंतु इसका मतलब यह नहीं है कि अखा ने वेद उपनिषद् कुरानादि धर्म ग्रंथों का विरोध किया है। साधना के मूल रहस्य को अधिगत करलेने के कारण अखा ने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ झूठे वैरागी, दंडी, मुंडी, ध्यानी, योगी तथा रसायन तथा गुट के चमत्कारवालों -- आदि सभी के प्रति व्यंग-प्रहार किया है[१]। इन सबके साथ अखा ने शिष्यों के समूह को बढ़ाकर अपना पंथ चलानेवाले झूठे गुरूओं को भी नहीं छोड़ा है। हाथ में माला और मन में माया का स्मरण करनेवाले दंभियों को भी फटकारा है। बाहरी तिलक लगाकर अपने आपको परम वैष्णव बताने-वालों को तो "काटनेवाले कुत्ते के समरूप"[२] बताया है। बाहरी वेष-टेक में पगे रहनेवाले भक्तों के सामने अखा ने एक आदर्श भक्त या संत की वास्तविक वेशभूषा एवं साधना का परम उदात्त चित्र प्रस्तुत किया है[३]। प्रस्तुत चित्र में

---

१. कोउ है कर्म धर्म के ज्ञानी कोउ है मंत्र उपासनहारा
कोउ है जोग पवन के ज्ञानी कोउ करे पंचभूत विचारा
जाकुं अखो कहे आपा पर छुटया, ज्ञान विज्ञान ज्युं का त्युं सारा। २७।
-सं० पि०

२. तिलक बतावत रुचि रुचि हेत नहि हरि जान।
जधपि टीलुवा स्वान है जात न कटनी बान ।।१।।
- असंत अंग, अ०स. पृ० २६२

३. ज्ञान तिलक दीनो भलो एक भावना माल
दीनी छाप निरंजनी बन्यो वैरागी लाल ।।१।।
टोपी सिर अर्धमात्रिका गुदड़ी रंग पंचभूत।
फूलमाल निरवासना सेली सुरत्य अद्भूत ।। २ ।।

धर्म संप्रदायों में स्थूल अर्थों एवं साधनों के रूप में गृहीत माला, तिलक, नाम-स्मरण, वेशभूषा, हरिभक्ति आदि को नये अर्थों एवं नये संदर्भों में प्रस्तुत कर अपने समाज को एक आदर्श भी दिया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उनकी वाणी के मूल में सत्य-निष्ठा, लोकसंग्रह, सार ग्राहिता एवं स्वानुभूति जैसी उदात्त भावनायें अंतर्निहित होने के कारण उन्हों ने " ऐसा मत करो " ही नहीं कहा है, बल्कि ऐसा भी कहा है कि " ऐसे करो " अर्थात् उन्हों ने अपने समाज को गलत मार्ग पर आगे बढ़ने से केवल डाँटा और रोका ही नहीं उसे ठीक मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित भी किया है। अतः निःसंकोचभाव से निम्नलिखित तथ्यों को प्रस्तुत किया जा सकता है -

१. वे कपटाचरण का निराकरण कर समाज में सत्याचरण की प्रतिष्ठा करना चाहते थे।
२. मिथ्याडंबरों के स्थान पर सदाचारों का प्रचार करना चाहते थे।
३. दूषित सामाजिक अव्यवस्थाओं के स्थान पर सहजीकृत सामाजिक सुव्यवस्था एवं सुदृढ़ता का मंडन करना चाहते थे।
४. समाज के पारस्परिक भेदभाव को दूर कर सहानुभूति, समदृष्टि, सद्भाव एवं "सहज जीवनयापन" की परंपरा की स्थापना करना चाहते थे।

निज नेहचा उड़ायनी जंगोटा सो निरास
आड्यबंध एक लहा का सत्य लंगोटा पास ।।३।।
वस्तु विचार सो कुबड़ी अंचरा सहज स्वभाव ।
आसन पिंड ब्रह्मांड पर जहां जीव का न टीके पाव ।।४।।
सुर्त निर्त ले बोलणा चलनो चिद् आकाश
ध्याता ध्ये और ध्यान का जाये सर्व समास ।।५।। - वेष अंग, अ०रस, पृ०२६१